Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 6 | ISSUE : 5 | MAY 2020

21वीं सदी के उपन्यासों में भूमण्डलीय अपसंस्कृति का चित्रण

डॉ. दिनेश कुमार गोधा [1]

[1] सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय पांचला सिद्धा

ABSTRACT:

KEYWORDS:

विगत काफी समय से भूमण्डलीकरण शब्द चर्चा में रहा है। भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप विश्व के सभी देशों में वस्तुओं की कीमत समान होती है। सामान्य शब्दों में भूमण्डलीकरण का अर्थ सम्पूर्ण विश्व का एकजुट हो जाना। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व एक परिवार लगता है।

उदारीकरण, आर्थिक विकास एवं निजीकरण के सामंजस्य की विश्वस्तरीय प्रक्रिया को भूमण्डलीकरण/वैश्वीकरण कहते हैं। भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप व्यावसायीकरण को अधिक बढ़ावा मिला है।

भारत में भूमण्डलीकरण की शुरूआत 1991 में अपनाई गई नई आर्थिक नीति के तहत हुई। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के तहत वस्तुओं एवं सेवाओं को एक देश से दूसरे देश में आने एवं जाने के अवरोधों को समाप्त कर दिया जाता है।

भूमण्डलीय अपसंस्कृति

विभिन्न देश आर्थिक के नए मॉडल को तैयार करने में उदारवाद व उपभोक्तावाद दौड़ में दौड़ रहे हैं। सारी मनुष्य जाति को विज्ञापन संस्कृति और बढ़ता बाजारवाद अपने दंश से ड़स रहा है। और इस तरह की उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्परिणामों को कई मनुष्य भोग रहे हैं पर उन्हें इन दुष्परिणामों का पता भी नहीं है, जब से भूमण्डलीय संस्कृति प्रभाव में आई है। बुद्धिजीवियों के लिए यह लगातार चिन्तन मनन का विषय रहा है। हिन्दी उपन्यासकार भी इस चिन्ता से अछूता नहीं रहा, भूमण्डलीकरण से उत्पन्न समस्याओं को उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। कई उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में इन समस्याओं को बड़ी ही गहराई से चित्रित किया है।

भूमण्डली संस्कृति का वर्चस्वादी प्रभाव सीधे–सीधे संस्कृति पर आक्रमण करता हुआ दिखाई देता है। इस विषय को उपन्यासकारों ने बड़ी गहराई से चित्रित किया है। हमम हम बाकी नहीं रहा, वह छाता चला गया। किसी भी देश में जीवन के किसी भी क्षेत्र में स्थानीकरता के लिए कोई अवकाश नहीं रहा, लगातार कई देशों का पुरानी सभ्यताओं का अमेरिकीकरण होता चला जा रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशिक समय से पहले हमारा मैकालेकरण हुआ था और अब वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के प्रारम्भ से ही हमारा मैकडोनलीकरण होता चला गया। आज स्थिति यह हो गई है कि किसी भी क्षेत्र में हमारी निजता की विलुप्ति हो गई है, और तेजी से होती जा रही है। मांगलिक अवसरों पर परम्परागत देशी मिठाईयों से मुँह मीठा कराने के बजाय 'कुछ मीठा हो जाए' के नाम पर कैडबरी के लड्डू और मिठाईयाँ बाँटी जा रही हैं। शगुन के रूप में विवाह के निमन्त्रण–पत्र के साथ परम्परागत मिठाई के स्थान पर डिब्बे में कैडबरी की चॉकलेट मिठाइयां आ रही हैं। हमारी भाषा में रंगों की देशज पहचान विलुप्त हो गई है, खोजते रह जाते हैं हमारे घर परिवार के सदस्य पीच कलर, कोका कोला कलर, बॉटन ग्रीन, स्काई ब्ल्यू आदि से जो परिचित हैं किन्तु बादामी, नारंगी, कत्थई, किशमिशी, मूँगिया, आसमानी नीला, प्याजू, जामुनी आदि रंगों की पहचान आर उनसे अपना मानसिक जुड़ाव पूरी तरह भूल चुके हैं।

फौरहैड, आई ब्रो, आइज, नोज, लिप्स, टीथ, चेस्ट, स्टौमॅक आदि। खावे, उँगलियों की पोर पहुँचा, रखने, तलुए आदि शब्दों से तो नई पनपति पढ़ी परिचय लगभग खो चुकी है। कहने को तो यह बात सामान्य सी लगती है किन्तु वस्तुतः यह संस्कृति दृष्टि से अपनी जड़ों से पूरी तरह उखड़ते चले जाने की तीव्र प्रक्रिया है। यह पीड़ा प्रकारान्तर से लगभग प्रत्येक सजग उपन्यासकार ने पहचानी है। रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'दस बरस का भँवर' में संस्कृति के इस नव औपनिवेशिक रूप को बड़ी तकलीफ से इस प्रकार विवेचित किया है। ''दो सदी पहले अंग्रेजों ने एक हाथ में सलीब (सूली) और दूसरे हाथ में बन्दूक लेकर हमारे देश में प्रवेश किया था। इस दशक में गोरों ने फिर एक हाथ में पेप्सी और दूसरे हाथ में टी.बी. का केबिल लेकर हमारी धरती पर कदम रख रहे हैं। धरती पर कदम रखने वाले वे खुद नहीं हैं। उनके अक्स हैं। ये अक्स अन्तरिक्ष में घूमते सैटेलाईट के जरिए हमारे घरों में आते हैं। हमें पता नहीं चलता। हम अमरीकी बिम्बों के गुलाम हैं।'' हम एक ऐसे समय में रह रहे हैं। जिसमें अमेरिकी संस्कृति का संक्रामक रोग हमें बुरी तरह अपनी चपेट में ले रहा है। नव विकासवाद ने अमीर और गरीब के बीच खाई को और भी चौड़ा कर दिया है, हम जिस समय में जी रहे हैं, उसमें शिजोफेनिया (एक प्रकार का मानसिक विकार) का अन्देशा और भी ज्यादा है। यह ऐसा समय है जिसमें देश के एक तिहाई लोग भूखे थे। और एक चौथाई पिज्जा खा रहे थे – बाकी लोग प्रदर्शन–खिड़की में आँखें गड़ाए खड़े हैं।[8] रवीन्द्र वर्मा 'फास्ट फूड' और 'फास्ट सक्सेस' की ही बात नहीं करते वे इस अमेरिकीकरण प्रदत्त उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ विज्ञापन जगत के कामुक विज्ञापनों और तरह–तरह के आकर्षणों में संलिप्त अपसंस्कृति की ओर बढ़ती नई पीढ़ी की जीवन–पद्धति पर भी कुपित हैं, ''बाजार इन्हें भड़काता है''....''हर लड़के को ली बाइट जीन्स, सेल–फोन, मारूति और उन तीन लड़कियों में से एक लड़की चाहिए जो ब्रीफ के विज्ञापन में समुद्र की लहरों से दौड़ती हुई लड़के की ओर रोज टी.वी. के परदे पर आती है।''[9] ब्रांडिड संस्कृति और बाजारवाद की अन्य जुगतों पर भी उपन्यासकार की दृष्टि जाती है और विभिन्न रूपों में वह अमेरिकीकरण की अन्य विसंगतियों पर भी अपने पैनी दृष्टि डालता है।

अलका सरावगी अपने उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में इस वैश्वीकरण की आर्थिकता देश की मौद्रिक नीति, बहुराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) कम्पनियों द्वारा देश के बाज़ार और घरों में प्रवेश, व्यवसाय (कार्पोरेट) जगत के मुनाफे के धन्धों के विभिन्न समीकरणों 'डिपार्टमेन्टल स्टोरों' की सफलता के राज, अमेरिकीकरण के फलस्वरूप देश में अमीरी–गरीबी के बीच निरन्तर बढ़ती खाई, आदि का बहुत गम्भीर विवेचन एक अर्थशास्त्री जैसी दृष्टि से किया हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में जीवन में तीव्र गति से परिवर्तन आया हैं,'' जमाना हर समय बदलता है, पर पिछले दस सालों में जमाना एक बार छलाँग लांघकर जैसे सौ साल आगे निकल गया हैं।'' बाजारवाद और विज्ञापन की तिकड़मों में माल की खपत बढ़ाने की जुगतों, ब्रांडिड संस्कृति के आकर्षणों आदि की चर्चा उपन्यास को बहुत पठनीय रूप प्रदान करती है, यथा–''दो विदेशी लोग बड़े जालिम हैं। उन्हें क्या इस देश की भूखी–नंगी जनता को खिलाने–पिलाने की चिन्ता है, जो ये सब सवाल उठाते हैं ? उन्हें तो सिर्फ अपना माल सस्ते में बनवाने की फिक्र है, क्योंकि उनके अपने देश में लगभग मुफ्त में माल बनाने वाले गुलाम कहाँ मिलेगें ? या फिर अपना माल यहाँ के पच्चीस करोड़ मोडिल क्लास लोगों में खपाने की फिक्र है। एक तरफ पश्चिम के बड़े–बड़े ब्रांड–गैप, पोलो, टॉमी हिलफिगर, मार्क्स एण्ड स्पेन्सर अपना सारा माल इण्डिया की फैक्टिरियों में सस्ते में बनवा रहे हैं, तो दूसरी तरफ लेबी, सोनी, बॉक्सीन राबिंस जैसे ब्राण्ड जीन्स और टी.वी. से लेकर आईसक्रीम तक महानगरों के बड़े–बड़े शॉपिंग मॉलों में बेच रहे हैं। पर बात जब करेगें तो गरीबी रेखा के नीचे रखने वाले लोगों की या फिर 'चाइल्ड लेबर की।''[10] 'एक ब्रेक के बाद' में उपन्यासकार ने इस बात को प्रथम बार रेखांकित किया है कि इस नए आर्थिक निजाम में देश का दक्षिणी भाग, 'साउथ इण्डिया' किस प्रकार व्यापार केन्द्र (बिजनेस हब) बनता जा रहा है, ''अरे यंग मैन, बंगलोर, अब सिलिकोन वैली बन गया है, हैदराबाद

अब साइबरवाद है और चैन्नई गाड़ियों के कारखाने का ड्रीटोयट। तिरूपति नया मैनचेस्टर बन गया है।'' इसी प्रकार शेयर बाजार के उतार–चढ़ाव इस देश में बड़े–बड़े अमेरिकी कारखानों की ज़हरीली गैस के रिसाव, स्पेशन इकोनॉमिक जोन–सेज की परिकल्पना अमेरिका के वैश्वीकरण की सभी अवधारणाएँ 'एक ब्रेक के बाद' में चर्चित विवेचित हुई है।

राजू शर्मा का 'विसर्जन' बहुत विस्तार म वैश्वीकरण चालित नव उदारवाद और विकासवाद को व्यवसाय (कार्पोरेट) जगत के परिप्रेक्ष्य में विवेचित कर बनते भारत 'शाइनिंग इण्डिया' और वास्तविक भारत के जीवन के बीच की खाई को विश्लेषित करता है। कथानायक पी.वी. 'आर्थिक सुधार, अभिव्यंजना और अभिलाषा की खुशहाली' का अपना गुरु मन्त्र बताता हुआ 'बचत, निवेश और विकास का सद्‌गुण चक्र' बताता हैं, ''गांधी जी ने आजादी के लिए अहिंसा और सत्याग्रह का अनदेखा तरीका ईजाद किया, पी.वी. ने बाजारवाद और ग्लोबलाइजेशन का एक देशी संस्करण सामने रखा। महात्मा गांधी ने आत्मत्याग और सरल जीवन का पाठ पढ़ाया था, और पी.वी. ने अनन्त अभिलाषा और लाभ के लिए उधार–जनित उपभोग को दिव्य बोध की रोशन दी।'' देश के विकास की जो नवक्रान्ति भूमण्डलीकरण के द्वारा तेजी से फैल रही थी। उसके कुछ पक्षों की एक साथ जानकारी यहाँ सूक्ष्मता में इस प्रकार दी गई है, ''लोभ और लालसा के नैतिक पाठ का जो देशी संस्करण उसने तिन–तिन कर पिछले कई बरसों में तैयार किया था, एक एक रेखीय, जगत पिपासु, विश्वोन्मुख, दूर का चश्माधारी (ताकि दूर का चकाचौंध दिखाई दे, पास की गन्दगी नहीं) और विदेशी आँख से देख को विरक्त भाव से देखने वालों की एक पूरी जमात को मूर्तिमान करने का एक दशक का अथक प्रयास, अचानक तीन साल बाद इन प्रयत्नों के क्लोन एक संक्रामक रोग की तरह जनित होने, फैलने लगे। टाटा और मित्तल की कोरस और आर्सिलोर डील से लेकर शिल्पा शेट्टी की यू.के. रियल्टी शो में जीत, सेज (विशेष आर्थिक जोन) का साज या आई.टी. रियल एस्टेट का विस्फोट, सी.ई.ओ. नामक जन्तु की आकाश चुम्बी तनखाएँ या देश के अरबपतियों की निरन्तर बढ़ती संख्या, इण्डिया गेट की चौखट पर प्रज्ज्वलित मोमबत्तियों से पिघलता न्याय एस.एम.एस. जनित राजनीतिक डिस्कोर्स–वस्तुतः यह सब एक माला में पिरोह महानता और उजाले सूर्य का आर्तनाद बन रहा था।''[12] वस्तुतः यह पूरा उपन्यास भूमण्डलीकरण आर्थिकता के विभिन्न विद्रूपों पर बहुत गम्भीरता से तथ्य और आँकड़े प्रस्तुत करता हुआ बताता है। कि इस नव विकासवाद ने देश को किस किस प्रकार और कितना–कितना छला है।

गिरिराज किशोर का ताजा उपन्यास 'स्वर्णमृग' (2012) वैश्वीकरण के देश को बहुत गहरी पीड़ा से उकेरता है। इस संक्षिपत उपन्यास में ग्लोबलाइजेशन, जिसका अनुवाद ''वैश्वीकरण'' लेख को अपूर्ण–सा लगता है। कहर को बड़ी चिन्ता से लक्षित किया जाता है। इस अमेरिकी अर्थव्यवस्था में मानवता को किस प्रकार शान्ति और चैन से दूर कर दिया है। जिस प्रकार राष्ट्रों और व्यक्तियों को उधार की क्रेडिट कार्ड संस्कृति में ढाल दिया है। वह चारवाहक के 'ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत' के दर्शन को भी बहुत पीछे छोड़ देता है। फोन–मोबाईल फोन, इन्टरनेट, क्रेडिट कार्ड, संस्कृति में ढाल उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद और वैश्वीकरण की अन्य सौगातों ने मनुष्य को एक स्वर्ण–मृग की माया मरीचिका में भटका दिया हैं। जिसके पीछे वह पागल होकर दौड़ रहा है। वस्तुतः वह एक राक्षस या कालोदह का नाग हे, कथा–नायक को लगता है कि वैश्वीकरण''.....आखिर वह इंसान है या कोई दाना है जो जब आता है तो निपटाता चला जाता है, या सिमसिम जैसी कोई चीज है जो खुलते ही मालामाल कर देता है। लेकिन आधी–अधूरी बातों से अन्दाजा लगाना मुश्किल होता हे। उसने शुरू में जो लिखा था उससे लगता था कि वैश्वीकरण जैसा कोई मिथ है। लेकिन उसने बाद में लिखा यह तो कालीदह है जिसमें रह रहे भयंकर सहस्त्र सिरों वाले नाग को नाचने के लिए कृष्ण उसमें कूद गए थे। उसने बड़े मजे से अमेरिका का जिक्र किया था कि उसने ही इस कालीदह का निर्माण किया।.....जिसने दूसरों के लिए कालिदह का निर्माण किया आज वह स्वयं ही उसमें डूब रहा है।''[13] 'धन और संसाधनों का हिमालय' भी 'कभी किसी नदी में डूब सकता हैं', यह आश्चर्यकारी है किन्तु 2008 के शुरू में यही तो अघटित घटा था जिसने पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को झकझोरकर रख दिया। उपन्यास अपने को साइबर–क्राइम की उस समस्या से जोड़ता है जिसने व्यक्ति को 'अमेरिका की मन्दी ने व्यक्तिगत रूप से धन कमाने की नई पद्धतियों–धोखाधड़ियों की ओर धकेल दिया। आज मोबाईल व कम्प्यूटर पर रोज हजारों–हजारों डॉलरों और पांउड्स की इनामी राशि आपके नाम हो जाने की एस.एम.एस. या ई–मेल आती है कथा नायक पुरूषोत्तम उसी में फंसकर किस प्रकार आगे से आगे जाल साजियों, मायामृग के भटकाव में फंसता चला जाता है। उसका रोचक चित्रण उपन्यास में हैं। ई–मेल के माध्यम से ढेरो–ढेर राशियों का प्रलोभन देता यह मायामृग वैश्वीकरण की इस आर्थिक लालसा की मरीचिका में भोले इन्सानों को अपने जाल में फंसा रहा है, इस त्रासदी का वो सशक्त आख्यान तो 'मायामृग' उपन्यास बनता ही है, ''इस नए आर्थिक इन्कलाब ने रिश्तों को कितना खोखला कर दिया है, आपाधापी की सुनामी में सब लोग बहे जा रहे हैं।''

आज एकाध ही कोई ऐसा उपन्यास होगा जिसमें किसी न किसी रूप में अवसर निकालकर उपन्यासकार ने भूण्डलीकरण के किसी न किसी पक्ष पर बात न की हो। उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, इनको बढावा देता विज्ञापन जगत, टी.वी. की अपसंस्कृति, प्रत्येक क्षेत्र में अमेरिकी वर्चस्व आदि का चित्रण लगभग प्रत्येक उपन्यास में मिल जाता है। अमेरिकी संस्कृति में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं जिन्हें भारतीय परम्पराओं के बर अक्स रखकर देखने की आवश्यकता है– इस तथ्य को रेखांकित किया गया है, रवीन्द्र कालिया के ए.बी.सी.डी. उपन्यास में जिसके शीर्षक का पूर्ण रूप है – 'अमेरिका बॉर्न कन्फयूज्ड देसी'। आज अमेरिका उच्च वर्ग तथा उच्च मध्य वर्ग की नई पीढी के लिए जन्नत का दर्जा पाए हुए उनका मक्का–मदीना बन गया है। वहाँ रहते भारतीय परिवारों की यहां बड़ी भारी समस्या है कि उनकी बेटियां 'डेटिंग' पर जाने के लिए उतावली हैं, वे उन्हें कैसे संभालें। डेटिंग का नाम सुनते ही माँ की यह स्थिति है कि वह ''अवसाद में डूबी हुई थी जैसी शीनी ने कुल की मर्यादाओं का गला घोंट दिया हो और अब डेट से लहू–लुहान लौटेगी।'' माँ–बेटी के बीच हुआ संवाद चौंकान वाला है ''अपूर्वा के जाने के बाद शीनी को डांटा तो उसने अत्यन्त बदतमीजी से जवाब दिया कि माँ सिर्फ दिन–रात सलवार पर पहरा देने वाली लड़कियां ही पवित्र नहीं होतीं। मैं देख रही हूँ इस देश में हिन्दुस्तानियों ने अपनी बेटियों को यही एक काम दे रखा है। आज पूरी दुनियां में लड़कियाँ मर्दों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही हैं।'' उपन्यास भारतीय संस्कृति के कितने ही तथाकथित छद्‌म आदर्शों पर कटाक्ष कर कहता है कि कब तक हम अपने देश को ऋषियों–मुनियों की धरती कहकर इसका गौरव–गान करते रहेंगे, कितने छल–छद्‌म से लाग उस देश में प्रवेश के लिए धरती आसमान एक करते रहते हैं, ''कोई सगी बहन से फर्जी शादी रचाकर चला जाता है तो कोई बहू से। जितनी झूठी शादियों और झूठे तलाक यहाँ के हिन्दुस्तानियों के बीच होते हैं, किसी दूसरे मुल्क के बीच न होते होगें।''....हिन्दुस्तानियों को यह कहते हुए सुनता हूँ कि 'अवर कंट्रीइज वैरीग्रेट' तो मेरा बहुत मनोरंजन होता है। दलितों, अल्पसंख्यकों और अपनी बहुओं को जिन्दा जलाने वाली कौम जब नैतिकता और अहिंसा का वास्ता देती है तो मेरी हँसी छूट जाती है।'' शीनी गुस्से में माँ से यह तक कह जाती है कि ''तुम लोगों की सारी नैतिकता चड्‌ढी तक सीमित है।'' अपनी इसी दृष्टि के कारण रवीन्द्र कालिया का यह छोटा–सा उपन्यास महत्वपूर्ण हो जाता है कि यहां बड़ी तटस्थ और बेबाक दृष्टि से यौनिक पावित्र्य पर भारतीय और अमेरिकी दृष्टियों को समानान्तर रखकर देखता है। निश्चित रूप से भूमण्डलीकरण की आंधियों–व्याधियों को देखना 21वीं शदी के उपन्यास का सर्वप्रमुख सरोकार बना हुआ है।

REFERENCES

No reference, since the present article is an outcome of Creative Writing